बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 203

निजीकरण की राह

इस समय निजीकरण पर जोर है। रेलवे स्टेशन और रेलगाड़ियां, हवाई अड्डे, कंटेनर कॉर्पोरेशन, शिपिंग कॉर्पोरेशन, राजमार्ग परियोजनाएं, एयर इंडिया, भारत पेट्रोलियम इन सभी का तथा अन्य संस्थानों का भी निजीकरण होना है। यहां हम विनिवेश नहीं बल्कि पूर्ण निजीकरण की चर्चा कर रहे हैं। यानी स्वामित्व में बदलाव। पिछली बार ऐसा वाजपेयी सरकार के कार्यकाल में अरुण शौरी ने किया था। ऐसा लग रहा है कि आखिरकार प्रधानमंत्री मोदी अपनी कही उस बात पर अमल करने जा रहे हैं कि सरकार का काम कारोबार करना नहीं है।

इसके लिए तमाम प्रेरक वजहें हो सकती हैं। उदाहरण के लिए सकारात्मक कदम उठाने की सरकार की प्रतिष्ठा बहाल करना। दरअसल 2016 की नोटबंदी और वस्तु एवं सेवा कर के कमजोर क्रियान्वयन से ऐसी धारणा बन गई थी कि मंदी के लिए ये कदम भी कुछ हद तक जिम्मेदार हैं। एक अन्य लक्ष्य बढ़ते राजकोषीय घाटे को कम करना भी हो सकता है। सरकार एक के बाद एक नए व्यय कार्यक्रमों की घोषणा कर रही है और कर रियायतें प्रदान की जा रही हैं। एक ओर जहां व्यय बढ़ा है, वहीं कर राजस्व में कमी आई है। इससे पहले कि राजकोषीय अंतर शर्मिंदा करने वाले स्तर पर पहुंचे, कहीं न कहीं से तो धन जुटाना होगा। भारतीय रिजर्व बैंक को एकबारगी हस्तांतरण करने पर मजबूर किया गया लेकिन वह पर्याप्त नहीं है। ऐसे में निजीकरण उपयोगी हो सकता है लेकिन दिक्कत यह है कि अभी आधे से अधिक वित्त वर्ष बाकी है और जिन सरकारी परिसंपत्तियों की बिक्री की घोषणा की भी गई है, वह मार्च के अंत तक पूरी होती नहीं दिखती।

बहरहाल, चाहे जो भी हो, निजीकरण का स्वागत है। राजकोषीय शुद्धतावादी कहेंगे कि मौजूदा व्यय की पूर्ति के लिए परिसंपत्तियों की बिक्री करना उचित नहीं है। वैसे ही जैसे किसानों या स्वास्थ्य बीमा योजना पर व्यय की प्रक्रिया निरंतर नहीं चल सकती। कभी न कभी तो बिक्री के लिए उपलब्ध परिसंपत्ति समाप्त हो जाएगी। हालांकि वह अभी दूर की संभावना है और सकारात्मक रूप से देखें तो निजी कारोबारियों द्वारा संपत्ति के व्यवस्थित इस्तेमाल के अपने लाभ हैं। निजीकरण के पीछे वास्तविक दलील भी यही है।

क्या यह कारगर साबित होगा? यह कारगर हो सकता है बशर्ते कि सरकार बिक्री या लीज की शर्तें समझदारीपूर्वक तय करे। वरना एयर इंडिया जैसी स्थिति बन सकती है। जहां तक खरीदारों की बात है तो यह सच है कि अधिकांश देसी कारोबारी घराने अभी नकदी खर्च करने के मिजाज में नहीं हैं। वे कर्ज कम करने पर केंद्रित हैं। इसके अलावा कई स्थापित कारोबारियों की निवेश करने की क्षमता दिवालिया प्रक्रिया के कारण बुरी तरह प्रभावित हुई है। ऋण के बदले जारी किए गए शेयर एकदम मिट्टी के मोल बिक रहे हैं। अनिल अंबानी, रुइया बंधु, सुभाष चंद्रा और अन्य कारोबारी यह झेल चुके हैं जबकि गौतम थापर और रैनबैक्सी से जुड़े रहे सिंह बंधुओं को वित्तीय पूंजी के साथ-साथ सामाजिक साख भी गंवानी पड़ी है। दूसरी ओर बीते कुछ वर्षों के दौरान हालात ऐसे बने हैं कि कुछ कंपनियों के पास पर्याप्त नकदी और ज्यादा ऋण लेने की गुंजाइश है लेकिन वे खपत में धीमापन आने के कारण निवेश नहीं कर रहे। नया कारोबार शुरू करने या खराब परिसंपत्ति खरीदने के लिए उन्हें पैसे खर्च करने पड़ सकते हैं। इसके अलावा कुछ अंतरराष्ट्रीय हित भी जुड़े हो सकते हैं।

इन बातों का राजनीतिक जोखिम भी है। आरएसएस प्रमुख ने इस नीति के कुछ पहलुओं को लेकर चेतावनी दी है। श्रम संगठनों द्वारा भी असंतोष दर्ज किया जा रहा है। मोदी सरकार ऐसे प्रतिरोध से पार पाने में सक्षम है लेकिन उसे अपनी प्रतिष्ठा को उत्पन्न जोखिम को भी ध्यान में रखना होगा। भारत समेत कई देशों में निजीकरण के साथ विवाद जुड़े रहते हैं। जब लंबे समय की लीज जैसे जटिल वित्तीय मसलों पर जल्दबाजी में बिना मशविरे के निर्णय लिया जाए तो विवाद उत्पन्न होते हैं। हवाई अड्डों को अदाणी समूह को देना इसका उदाहरण है।

इस बीच यह स्पष्ट नहीं है कि पूरा ध्यान परिवहन क्षेत्र पर क्यों केंद्रित है? निजीकरण की प्रक्रिया जहां प्रधानमंत्री कार्यालय और नीति आयोग की निगरानी में है और नितिन गडकरी और पीयूष गोयल के रूप में दो अत्यंत जीवंत मंत्री परिवहन से जुड़े क्षेत्रों के प्रभारी हैं। लेकिन यह कोई वजह नहीं है कि सरकार अन्य क्षेत्रों की संकट से गुजर रही सरकारी इकाइयों के निजीकरण पर ध्यान न दे। खासतौर पर घाटे में चल रही दोनों सरकारी दूरसंचार कंपनियां जिनमें सुधार की उम्मीद नहीं। इसके अलावा सरकारी बैंकों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए जो बीते पांच सालों में जनता के 2 लाख करोड़ रुपये पचा चुके हैं।

साप्ताहिक मंथन

टी. एन. नाइनन

विनय सिन्हा

पुराने बनाम नए बुर्जुआ की बहस में उलझा देश

परिसंपत्ति निर्माण करने वालों की बुराई और नागरिकों पर ठप्पा लगाना राजनीतिक रूप से लाभदायक हो सकता है लेकिन देश के भविष्य के लिए यह सही नहीं होगा। विस्तार से बता रहे हैं **श्याम सरन**

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व वाली भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की मौजूदा सरकार लगातार खुद को पिछली सरकारों से अलग बताती रही है। यहां तक कि उसने अपने आपको अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली भाजपा की पिछली सरकार से भी अलग दर्शाया है। यह सरकार एक नव राजनीतिक बुर्जुआ के रूप में सामने आई है जो अधिक समकालीन, विश्वसनीय और देसी सामाजिक और सांस्कृतिक भारतीय यथार्थ का प्रतिनिधित्व करती है।

इसे इस बात से महसूस किया जा सकता है कि यह सरकार सचेत ढंग से और जानबूझकर सामाजिक और आर्थिक प्रगति के मामले में अंग्रेजी भाषा और शिक्षा का अनादर करती है। उसमें उच्च वर्गीय शिक्षण और अनुभव से प्राप्त पेशेवर विशेषज्ञता और कौशल को लेकर निरंतर संदेह का भाव बना रहता है, खासतौर पर अगर इनका प्रदर्शन अंग्रेजी भाषा में किया जाए। परंतु अंतरिक्ष और नाभिकीय ऊर्जा के क्षेत्र में देश की सफलता को देखें तो वह पुराने बुर्जुआओं द्वारा किए गए दूरदर्शी सामूहिक निवेश का नतीजा है। अंग्रेजी भाषा में पकड़ के बिना यह संभव नहीं था। इन पुराने बुर्जुआ ने जो संस्थान, मानक और प्रक्रियाएं तय किए थे उन्हें नष्ट किया जा रहा है या बदला जा रहा है और नया संगठनात्मक ढांचा और मानक तय किए जा रहे हैं। ये नए मानक और ढांचे ऐसे हैं जो नए उभरते बुर्जुआ वर्ग के साथ तालमेल बिठा सकें।

परंतु हमें वैकल्पिक मॉडल के बारे में कोई अंदाजा नहीं है। नए संस्थान और मानकों को अपनी जड़ें जमाने में वक्त लगता है। निश्चित तौर पर एक दौर तदर्थ प्रावधानों और विवेकाधीन निर्णय प्रक्रिया का भी होता है। उदाहरण के लिए कैबिनेट सचिव की अफसरशाही के मुखिया और अफसरशाही के विभिन्न अंगों के बीच समन्वयक की संवैधानिक भूमिका खत्म की जा चुकी है। प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव और राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकारों को अब कैबिनेट दर्जा हासिल है। जाहिर है ऐसे में कैबिनेट सचिव का कद घटा है। सशस्त्र बलों की बात करें तो अतीत में जो मानक सख्ती से प्रवर्तित किए गए थे उन्हें खारिज किया जा रहा है। वरिष्ठ कमांड ऑफिसर ने सार्वजनिक रूप से सामने आकर ऐसी घोषणाएं करनी शुरू कर दी हैं जो प्रयोजनमूलक आवश्यकताओं से परे हैं। हमारा सामना विरोधाभासी परिस्थितियों से होता है जहां एक ऐसी सरकार जो मजबूत नेतृत्व और बेहतर प्रदर्शन क्षमता के कारण खुद पर गर्व करती है लेकिन उसमें सुसंगतता की कमी भी नजर आ रही है। इसकी ताकत रणनीतिक चपलता, संवाद की कुशलता और सार्वजनिक बहस में उसकी प्रवीणता है। परंतु संस्थानों के कमजोर होने, दूरगामी नीति तैयार करने को लेकर धैर्य न होने और अक्सर हकीकत से कोसों दूर लक्ष्य तय करने के चलते राष्ट्रीय हित में भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है। मौजूदा राजनीतिक प्रतिष्ठान लगातार मंदी की ओर बढ़ती अर्थव्यवस्था और कम होते रोजगार पर से जनता का ध्यान हटाने में कामयाब रहा है। इसके लिए जबरदस्त जनसंपर्क अभियान की सहायता ली गई है। इस बहस में 'लुटियन में रहने वाले बुर्जुआ', 'खान मार्केट गैंग' और 'सीमापार के दीमक' आदि केंद्र में आ गए हैं जो देश को खोखला कर रहे हैं। अल्पसंख्यकों के बारे में प्रचारित किया गया है कि वे हमारे पश्चिमी शत्रु के साथ विश्वासघाती सहानुभूति रखते हैं। ऐसे निराशावादियों का भी जिक्र किया जाता है जो इस सरकार की उपलब्धियों को कभी स्वीकार नहीं करते।

जम्मू कश्मीर में सरकार ने जिस तरह बदलाव किए हैं उनसे इस सरकार को तात्कालिक राजनीतिक लाभ मिले हैं। गलती करने की जरूरत नहीं है, जम्मू कश्मीर की राजनैतिक और संवैधानिक स्थिति में जो बदलाव किया गया है उसे लेकर चिंता के बजाय आम जनता में सराहना का भाव है। वहां देश के नागरिकों के साथ जो कुछ हो रहा है, उसके बारे में कोई यह नहीं सोच रहा कि संवैधानिक व्यवस्था और संस्थागत सीमाओं से परे परिस्थितियों में ऐसा हमारे साथ भी हो सकता है। राजनीतिक विचलन की यह नीति कब तक कारगर रहेगी? शायद लंबे समय तक लेकिन इसमें मौजूदा विरोधाभास इसे अस्थायी भी बनाता है। सरकार का लक्ष्य है देश को विश्व समुदाय में अग्रणी स्थान दिलाना। उसे शक्ति और प्रतिष्ठा संपन्न देश बनाना और नागरिकों को पूरे विश्व में सम्मान दिलाना। हालांकि अतीत की कमियों को बार-बार याद करना बेहतर भविष्य की गारंटी नहीं है हालांकि इससे आत्मविश्वास जरूर आ सकता है। माओ के काल में चीन का उदय हुआ होगा लेकिन उसकी मौजूदा शक्ति सीखने और विकसित देशों से निरंतर सबक लेने से आई है। लाखों चीनी छात्र और विद्वान इसलिए अंग्रेजी सीखते हैं ताकि वे बेहतरीन वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान हासिल कर सकें। चीन ने अतीत में जो हासिल किया उसके प्रति गौरवबोध था और उसके पास उपलब्धियों की भी कमी नहीं थी। इसे जानने के लिए जोसफ नीधम को पढ़ना श्रेयस्कर होगा। परंतु आज की दुनिया अलग है और हमें यह मानना होगा कि हमें लंबे समय तक दूसरों से ज्ञान लेना होगा भले ही हम ज्ञान के उत्पादक बनने की आकांक्षा में रहें।

इस राष्ट्रीय प्रयत्न के आयोजन में अंग्रेजी भाषा के साथ करीबी और सीखने के उन्नत केंद्रों तक पहुंच (भले ही सीमित वर्ग) महत्त्वपूर्ण परिसंपत्ति है जिसका समझदारीपूर्वक लाभ लिया जाना चाहिए।

प्रधानमंत्री मोदी को प्रवासी भारतीयों के बीच अपार लोकप्रियता हासिल है। हमें हाल ही में ह्यूस्टन में इसका नमूना देखने को मिला। लेकिन क्या अमेरिका, ब्रिटेन अथवा ऑस्ट्रेलिया के प्रवासी पुराने भारतीय बुर्जुआ हैं या नए? उन्होंने जो हासिल किया है क्या वह अंग्रेजी भाषा को नकार कर हासिल किया जा सकता था? और क्या उन देशों में उनका स्वागत इसलिए नहीं हुआ कि वे साझा राजनीतिक मूल्यों और संस्थानों वाले देशों से आते हैं?

पुराने और नए बुर्जुआ की बहस देश को शक्तिशाली बनाने के तय लक्ष्यों को हासिल करने की राह में बाधा बन रही है। सरकार को प्रतिभाओं को आगे बढ़ाना चाहिए और नागरिकों के कौशल और ऊर्जा को सकारात्मक ढंग से बढ़ावा देकर लक्ष्य हासिल करना चाहिए। नागरिकों का नामकरण करके, उन्हें राष्ट्रवादी और राष्ट्रद्रोही में बांटकर देखना, परिसंपत्ति निर्माताओं की आलोचना करने जैसी रणनीति राजनीतिक रूप से कारगर हो सकती है लेकिन यह देश के भविष्य के लिए कतई नुकसानदेह है।

डीटीएच ग्राहकों के गुम होने से जुड़े मिथक का सच

मीडिया मंत्र

वनिता कोहली-खांडेकर

जब परंपरागत मीडिया को लेकर बुरी खबर आती है तो विश्लेषकों एवं सोशल मीडिया विशेषज्ञों की प्रतिक्रिया कमोबेश अनुमानित ही होती है। हर बात को बड़ी तेजी से 'डिजिटल क्रांति' और 'कॉर्ड कटिंग' के जिम्मे डाल दिया जाता है। पिछले हफ्ते भी कुछ ऐसा ही हुआ। द हिंदू बिज़नेसलाइन अखबार में 2 अक्टूबर को प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि इस साल फरवरी में दूरसंचार नियामक ट्राई की तरफ से नया शुल्क आदेश लागू किए जाने के बाद से डीटीएच ऑपरेटरों को 2 करोड़ घरों में अपने कनेक्शन से हाथ धोना पड़ा। इस रिपोर्ट में ट्राई के आंकड़ों का ही इस्तेमाल किया गया था।

इससे तीन सवाल खड़े होते हैं। पहला, आखिर डीटीएच कनेक्शन में गिरावट क्यों आई? वजह यह है कि डीटीएच कनेक्शन दर्ज करने का पैमाना ही बदल गया है। कई वर्षों तक ट्राई 120 दिनों से सक्रिय कुल ग्राहकों को आधार बनाता था। दरअसल उसे ऑपरेटर इसी तरह से आंकड़े देते थे। इसमें वे ग्राहक भी शामिल थे जो निष्क्रिय थे और 120 दिनों से रिचार्ज नहीं कराए होते थे। इस तरह मार्च 2019 में समाप्त तिमाही में 7.24 घरों में डीटीएच कनेक्शन थे। बहरहाल डीटीएच ऑपरेटरों ने आंतरिक निगरानी एवं प्रसारकों को किए जाने वाले भुगतान की गणना के लिए हमेशा ही एक महीने में चार खास दिनों पर आधारित औसत सक्रिय ग्राहकों का इस्तेमाल किया है। अपने नए शुल्क आदेश में पूरी पारदर्शिता पर जोर देने वाले ट्राई ने भी औसत सक्रिय ग्राहकों का ही इस्तेमाल करते हुए इनकी संख्या 5.43 करोड़ बताई है। इस तरह दोनों आंकड़ों में 1.8 करोड़ से भी बड़ा फासला है।

अब टेलीविजन दर्शकों के बारे में रिपोर्ट जारी करने वाली संस्था बार्क के आंकड़ों पर नजर डालते हैं। भारत में 19.7 करोड़ घरों में टीवी सेट हैं जिनमें से 10.5 करोड़ घरों में केबल, 5.5 करोड़ घरों में डीटीएच और करीब 2.5-3 करोड़ घरों में डीडी के फ्रीडिश कनेक्शन हैं। मोटा अनुमान है कि केवल दूरदर्शन के चैनलों तक पहुंच रखने वाले 80 लाख घर भी हैं। इसके अलावा इंटरनेट प्रोटोकॉल टीवी वाले घर भी हैं। इन सबको जोड़कर सही आंकड़ा सामने आता है।

120 दिन बनाम बीती रात में सक्रिय कनेक्शन की बहस कुछ वैसी ही है जैसे प्रिंट मीडिया में कुल पाठक संख्या (पिछले महीने अखबार पढ़ने वाले) बनाम औसत प्रतियां पाठक संख्या (कल अखबार पढ़ने वाले) की बहस है। कुल पाठक संख्या औसत प्रतियां पाठक से अमूमन तीन-चौथाई अधिक होती है। हालांकि विज्ञापनदाता औसत प्रतियां पाठक संख्या को ही मानक मानते हैं। डीटीएच उद्योग को शुद्ध सक्रिय ग्राहक का पैमाना बहुत पहले ही छोड़ देना चाहिए था।

दूसरा सवाल, अगर इतने ग्राहक नदारद हैं तो फिर 1.8 करोड़ ग्राहक कहां हैं? यह रिपोर्ट इस बिंदु पर आंशिक रूप से सही है। नया शुल्क आदेश आने के बाद चैनलों के शुल्क में 40-400 फीसदी वृद्धि हुई है। ऐसे में कुछ घरों ने नि:शुल्क डीटीएच या सस्ता केबल कनेक्शन ले लिया या फिर ओवर-द-टॉप (ओटीटी) प्लेटफॉर्म पर चले गए या एकदम निष्क्रिय ही हो गए। याद रखें कि कई घरों में छुट्टियों, परीक्षाओं या फिर अन्य कारणों से टेलीविजन देखना बंद हो जाता है। लेकिन इस दावे पर चर्चा हो सकती है कि अधिकतर दर्शकों ने टीवी देखना ही बंद कर दिया है या ट्विटर पर उसे कॉर्ड कटिंग के तौर पर पेश किया जाता है। इस तथ्य पर गौर कीजिए- 1.8 करोड़ घरों का मतलब है कि करीब 7.6 करोड़ लोग दायरे से बाहर चले गए हैं। अगर 83.6 करोड़ टीवी दर्शकों में से 7.6 करोड़ लोगों ने टीवी देखना बंद कर दिया है तो फिर टीवी दर्शकों की संख्या में भारी गिरावट आनी चाहिए थी। लेकिन इस साल के पहले 39 हफ्तों में दर्शकों की संख्या 2018 की समान अवधि के आंकड़े से आगे निकल चुकी है।

आख्यानों के आंकड़े तो कुछ और ही कहानी कहते हैं। ट्राई के शुल्क आदेश में चैनलों एवं बुके को चुनने में कई तरह की शर्तें एवं पाबंदियां लगाई गई हैं। 10.5 करोड़ घरों में कनेक्शन देने वाले केबल ऑपरेटरों के पास ऐसी लोचशीलता एवं क्रियाशील सुविधा है कि करोड़ों ग्राहकों को एक-एक चैनल चुनने की सुविधा दे सकें। इससे हताश होकर उपभोक्ता डीटीएच प्लेटफॉर्म का रुख कर रहे हैं।

तीसरा सवाल, टेलीविजन या अखबारों से मिलने वाली किसी भी बुरी खबर को लेकर इतना बेखबर उल्लास क्यों देखा जाता है?

भारत दुनिया में डिजिटल के सबसे तेजी से बढ़ते बाजारों में से एक है लेकिन सारा मीडिया साथ-साथ बढ़ रहा है, कुछ अधिक तो कुछ कम। अखबार अब भी मीडिया उद्योग के सबसे लाभदायक क्षेत्रों में से एक है लेकिन पाठक संख्या में वृद्धि की दर धीमी पड़ रही है। टीवी दर्शक, कनेक्शनों की संख्या और राजस्व सबकी वृद्धि दो अंकों में हो रही है। ब्रॉडबैंड कनेक्शन वाले 59.4 करोड़ भारतीय रोजाना 50 मिनट तक ऑनलाइन वीडियो देखते हैं। यह 83.6 करोड़ भारतीयों द्वारा टीवी देखने में बिताए जाने वाले औसतन 3.45 घंटे के समय से काफी पीछे है। ध्यान रखें कि फिल्मों ने उस साल बॉक्स ऑफिस पर अच्छा प्रदर्शन किया है जब ओटीटी ने भी रफ्तार पकड़ा है। लिहाजा ऑनलाइन प्लेटफॉर्म की बढ़त पूरक साबित हुई है, स्वभक्षी नहीं।

ऐसे में डिजिटल के हाथों दूसरे उद्योगों को निगलते हुए देखने की इतनी जरूरत क्यों है? अगर भविष्य में ऐसा होने की संभावना देख आप रोमांचित होते हैं तो फिर इसके बारे में सोचिए। दुनिया के डिजिटल विज्ञापन राजस्व के तीन-चौथाई से भी अधिक हिस्सा गूगल एवं फेसबुक युगल के नियंत्रण में है। क्या भारतीय मीडिया बाजार को भी ऐसा ही हो जाना चाहिए?

कानाफूसी

हाशिये पर बुजुर्ग

कांग्रेस की उत्तर प्रदेश इकाई में पिछले कुछ समय से जो तूफान उठा है, वह थमने का नाम ही नहीं ले रहा है। जब से प्रियंका गांधी प्रदेश कांग्रेस में सक्रिय हुई हैं, दिक्कत और बढ़ गई है। दरअसल, पार्टी के कुछ वरिष्ठ नेताओं के मन में उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमेटी के पुनर्गठन और पार्टी की महासचिव प्रियंका गांधी वाड्रा की पदाधिकारी का चयन करने की कार्यशैली को लेकर अच्छी खासी नाराजगी है। हाशिये पर किए जाने से नाखुश पार्टी के वरिष्ठ नेता और उत्तर प्रदेश में पार्टी का प्रमुख मुस्लिम चेहरा माने जाने वाले सिराज मेहदी ने पार्टी से इस्तीफा दे दिया है। उन्होंने पार्टी अध्यक्ष सोनिया गांधी को एक भावनात्मक खत लिखा हैऔर इस बात पर नाराजगी जाहिर की है कि प्रदेश कांग्रेस में अब शिया समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं बचा है जबकि भारतीय जनता पार्टी ने केंद्र और उत्तर प्रदेश दोनों जगह शियाओं को अहम पदों पर नियुक्ति दी है। मेहदी ने यह आरोप भी लगाया है कि कांग्रेस में अब 50 वर्ष से अधिक उम्र के नेताओं के लिए कोई जगह नहीं है।

आपका पक्ष

पारंपरिक तरीके से प्लास्टिक हटेगा

मानव ने प्लास्टिक का आविष्कार अपनी सहूलियत के लिए किया था। लेकिन वह इतना हावी हो गया कि इसके बिना जीवन असंभव सा लगता है। प्लास्टिक के बढ़ते इस्तेमाल से मानव जीवन के साथ पृथ्वी भी बुरी तरह प्रभावित हो रही है। इससे निपटने के लिए जनभागीदारी जरूरी है। केवल सरकार द्वारा एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक पर प्रतिबंध लगाने से इस समस्या का हल नहीं हो सकता है। प्लास्टिक कचरे में सबसे अधिक मात्रा एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लास्टिक की है जिसमें बोतल बंद पानी, स्ट्रॉ, एक बार इस्तेमाल होने वाले प्लेट तथा गिलास, चिप्स आदि के पैकेट शामिल हैं। इन पर रोक लगाने के लिए लोगों को जागरूक करने की जरूरत है। इसके अलावा सरकार को इसके विकल्प तलाशने होंगे। राज्यों को चाहिए कि वह इस अभियान को सफल बनाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़े। हमें यह भी ध्यान रखने की जरूरत है कि प्लास्टिक उद्योग से लगभग सात करोड़ लोग जुड़े हुए हैं। उनके लिए रोजगार की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए। प्लास्टिक के विकल्प में जूट की थैली, चाय-पानी के लिए मिट्टी का कुल्हड़, कांच की बोतल, पत्ते की प्लेट आदि के इस्तेमाल को बढ़ावा देने की जरूरत है।

संगीता चौधरी, जयपुर

दिल्ली में प्लास्टिक पर रोक लगने के बाद कपड़े की थैली बांटती एक संस्था की सदस्य

देश के भविष्य का संरक्षण जरूरी

संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों के अनुसार भारत में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर में कमी आई है। भारत ने वर्ष 2030 तक इसे 25 बच्चे प्रति 1,000 तक की वचनबद्धता भी व्यक्त की है। भारत इस संख्या को 2025 तक 23 तक लाने का लक्ष्य रखा है। राष्ट्रीय बाल नीति 2013 में इस बात को स्वीकार किया गया है कि बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य के साथ विकास करने के लिए दीर्घकालीन, स्थायी, बहुक्षेत्रीय, समन्वित और समावेशी दृष्टिकोण अपनाना जरूरी है। इस नीति में यह भी माना गया है कि प्रत्येक बच्चों को जीवित व स्वस्थ रहने, पोषाहार, शिक्षा, संरक्षण और सहभागिता का अधिकार है। बच्चों को अच्छा पोषाहार और संरक्षण सूचित करने के लिए महिला और बाल विकास विभाग और स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। बच्चों को पोषण और स्वास्थ्य की उचित देखभाल की जरूरत होती है क्योंकि यही बच्चे देश के भविष्य होते हैं। पौष्टिक आहार संबंधी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए, कार्यक्रमों को लागू करने में विद्यमान कमियों को दूर करने और सेवाओं का दायरा बढ़ाने जैसी चुनौतियों से निपटना भी जरूरी है क्योंकि बच्चों को पौष्टिक आहार की समस्या के समाधान के लिए यह जरूरी है।

सूर्यभानु बांधे, रायपुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।